Young Researcher
Peer Reviewed | International Open Access Journal
ISSN: 2277-7911 | Impact Factor – 5.958| *Website:* https://yra.ijaar.co.in/
Volume-14, Issue-3 | July – August – September 2025

Original Article

आधुनिक हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श : कृष्णा सोबती का योगदान

सविता कुमारी

शोधार्थी,

वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

Manuscript ID:
yrj-140316

ISSN: 2277-7911
Impact Factor – 5.958

Volume 14
Issue 3
July-August-Sept.- 2025
Pp. 137 - 145

Submitted: 27 July 2025
Revised: 8 Aug 2025
Accepted: 20 Aug 2025
Published: 10 Sept. 2025

Corresponding Author:
सविता कुमारी

Quick Response Code:

Web. https://yra.ijaar.co.in/

DOI:
10.5281/zenodo.20271964

DOI Link:
https://doi.org/10.5281/zenodo.20271964

सारांश:

कृष्णा सोबती आधुनिक हिंदी साहित्य की एक महत्वपूर्ण और प्रगतिशील लेखिका हैं, जिन्होंने स्त्री जीवन के विविध आयामों—विशेषकर उसकी अस्मिता, स्वतंत्रता, यौनिकता और सामाजिक संघर्ष—को अत्यंत साहसिक और यथार्थवादी दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य आधुनिक हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श के विकास की प्रक्रिया का विश्लेषण करते हुए कृष्णा सोबती के योगदान का आलोचनात्मक अध्ययन करना है।

इस अध्ययन में यह स्पष्ट किया गया है कि सोबती के उपन्यासों में स्त्री की आत्म-खोज और पहचान-निर्माण की प्रक्रिया एक जटिल और बहुआयामी यात्रा के रूप में सामने आती है, जिसमें वह पितृसत्तात्मक संरचनाओं, सामाजिक रूढ़ियों और सांस्कृतिक मान्यताओं के विरुद्ध संघर्ष करती है। उनकी नायिकाएँ केवल सामाजिक भूमिकाओं तक सीमित नहीं रहतीं, बल्कि वे अपने अस्तित्व, अपने शरीर, अपनी इच्छाओं और अपनी स्वतंत्रता के प्रति सजग होती हैं।

सोबती का साहित्य स्त्री को एक "वस्तु" से "चेतना" में परिवर्तित करता है। उन्होंने स्त्री यौनिकता को एक वैध और स्वाभाविक अनुभव के रूप में प्रस्तुत कर हिंदी साहित्य में एक नई वैचारिक दिशा प्रदान की। साथ ही उनकी भाषा-शैली—जो लोकभाषा, पंजाबी, उर्दू और बोलचाल की हिंदी का समन्वय है—स्त्री अनुभवों को अधिक प्रामाणिक और जीवंत बनाती है।

यह शोध-पत्र इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि कृष्णा सोबती का साहित्य आधुनिक हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श को न केवल सशक्त बनाता है, बल्कि उसे एक नई वैचारिक गहराई, संवेदनशीलता और स्वतंत्र दृष्टि भी प्रदान करता है। उनका योगदान स्त्री अस्मिता के विकास में एक आधारभूत स्तंभ के रूप में स्थापित होता है।

मुख्य शब्द: स्त्री विमर्श, कृष्णा सोबती, स्त्री चेतना, आत्म-खोज, पहचान, पितृसत्ता, यौनिकता, आत्म-स्वीकृति, आधुनिक हिंदी साहित्य, स्त्री अस्मिता, सामाजिक संरचना, भाषा और पहचान.

Creative Commons

Creative Commons (CC BY-NC-SA 4.0)

This is an open access journal, and articles are distributed under the terms of the Creative Commons Attribution-NonCommercial-ShareAlike 4.0 International License (CC BY-NC-SA 4.0), *which permits others to remix, adapt, and build upon the work non-commercially, provided that appropriate credit is given and that any new creations are licensed under identical terms.*

How to cite this article:

सविता कुमारी (2025). आधुनिक हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श : कृष्णा सोबती का योगदान. Young researcher, 14(3), 137 - 145. https://doi.org/10.5281/zenodo.20271964

Young Researcher
Peer Reviewed | International Open Access Journal
ISSN: 2277-7911 | Impact Factor – 5.958| *Website:* https://yra.ijaar.co.in/
Volume-14, Issue-3 | July – August – September 2025

भूमिका:

आधुनिक हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श एक अत्यंत महत्वपूर्ण, प्रभावशाली और परिवर्तनकारी वैचारिक धारा के रूप में विकसित हुआ है, जिसने साहित्य की विषयवस्तु, दृष्टिकोण, भाषा और संरचना—तीनों स्तरों पर गहरा प्रभाव डाला है। यह विमर्श केवल साहित्यिक आंदोलन नहीं है, बल्कि यह सामाजिक चेतना का भी विस्तार है, जिसका उद्देश्य स्त्री के अनुभवों, उसकी अस्मिता, उसकी सामाजिक स्थिति तथा उसकी स्वतंत्रता को साहित्य के केंद्र में स्थापित करना है।[1] इस विचारधारा ने साहित्य में सदियों से चली आ रही उस परंपरा को चुनौती दी है जिसमें स्त्री को केवल एक "पात्र", "छवि" या "भूमिका" के रूप में देखा जाता था।

स्त्री विमर्श ने साहित्य में स्त्री को एक ऐसी चेतन, संवेदनशील और निर्णय लेने वाली इकाई के रूप में प्रस्तुत किया, जो अपने जीवन, अपने शरीर, अपनी इच्छाओं और अपने अधिकारों के प्रति सजग है। यह परिवर्तन केवल साहित्यिक स्तर पर नहीं बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर भी महत्वपूर्ण माना जाता है, क्योंकि इसने स्त्री के प्रति स्थापित पारंपरिक दृष्टिकोण को प्रश्नांकित किया है और उसे एक नई पहचान प्रदान की है।

इसी व्यापक परिप्रेक्ष्य में कृष्णा सोबती हिंदी साहित्य की एक ऐसी सशक्त, साहसी और प्रगतिशील लेखिका के रूप में उभरती हैं, जिन्होंने स्त्री जीवन के जटिल यथार्थ को अत्यंत गहराई, संवेदनशीलता और यथार्थवादी दृष्टि से प्रस्तुत किया। उनका लेखन केवल भावनात्मक अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं है, बल्कि वह एक वैचारिक हस्तक्षेप भी है, जो स्त्री की सामाजिक स्थिति, उसकी मानसिक संरचना और उसकी स्वतंत्रता की आकांक्षा को गहराई से उजागर करता है।[2]

कृष्णा सोबती के साहित्य में स्त्री केवल पारंपरिक भूमिकाओं जैसे पत्नी, माँ या गृहिणी तक सीमित नहीं रहती, बल्कि वह एक जागरूक, आत्मचिंतनशील और विद्रोही व्यक्तित्व के रूप में उभरती है। उनके उपन्यासों में स्त्री अपने अस्तित्व की खोज में निरंतर संघर्ष करती दिखाई देती है और यह संघर्ष उसे आत्म-चेतना की ओर अग्रसर करता है। यह आत्म-चेतना ही उसकी पहचान निर्माण की प्रक्रिया का आधार बनती है, जहाँ वह समाज द्वारा निर्धारित सीमाओं को चुनौती देती है और अपने लिए एक नई राह तलाशती है।

सोबती का साहित्य इस बात को भी स्पष्ट करता है कि स्त्री की पहचान कोई स्थिर या पूर्वनिर्धारित अवधारणा नहीं है, बल्कि यह एक गतिशील और सतत विकसित होने वाली प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया समाज, परंपरा, संस्कृति और व्यक्तिगत अनुभवों के बीच चलने वाले द्वंद्व से निर्मित होती है। इसी कारण उनकी नायिकाएँ कभी परंपरा से जुड़ी दिखाई देती हैं, तो कभी आधुनिकता की ओर अग्रसर होती हैं, और इस द्वंद्व के माध्यम से वे अपनी पहचान को पुनः परिभाषित करने का प्रयास करती हैं।

उनके लेखन में पितृसत्तात्मक व्यवस्था एक प्रमुख सामाजिक संरचना के रूप में सामने आती है, जो स्त्री की स्वतंत्रता और उसकी पहचान को नियंत्रित करने का प्रयास करती है। किन्तु सोबती की नायिकाएँ

Young Researcher
Peer Reviewed | International Open Access Journal
ISSN: 2277-7911 | Impact Factor – 5.958| *Website:* https://yra.ijaar.co.in/
Volume-14, Issue-3 | July – August – September 2025

इस व्यवस्था के सामने निष्क्रिय नहीं रहतीं, बल्कि वे प्रतिरोध, प्रश्न और आत्मनिर्भरता के माध्यम से अपने अस्तित्व को स्थापित करने का प्रयास करती हैं। यह संघर्ष उनके भीतर आत्म-खोज की प्रक्रिया को और अधिक तीव्र बनाता है।

इस प्रकार कृष्णा सोबती का साहित्य स्त्री विमर्श को एक नई दिशा, नई गहराई और नया दृष्टिकोण प्रदान करता है, जहाँ स्त्री केवल देखने की वस्तु नहीं, बल्कि स्वयं को देखने, समझने और परिभाषित करने वाली चेतना बन जाती है। उनका लेखन आधुनिक हिंदी साहित्य में स्त्री अस्मिता के विकास का एक महत्वपूर्ण आधार स्तंभ माना जाता है।

स्त्री विमर्श की अवधारणा:

स्त्री विमर्श एक ऐसी आलोचनात्मक और वैचारिक दृष्टि है, जो पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचनाओं, परंपरागत मान्यताओं और सांस्कृतिक रूढ़ियों को गहराई से प्रश्नांकित करती है। यह दृष्टिकोण साहित्य और समाज दोनों में स्त्री के अनुभवों, उसकी पीड़ा, उसकी आकांक्षाओं तथा उसकी स्वतंत्र चेतना को केंद्र में रखकर विश्लेषण प्रस्तुत करता है।[3]

स्त्री विमर्श केवल एक साहित्यिक प्रवृत्ति नहीं, बल्कि एक सामाजिक आंदोलन भी है, जिसका उद्देश्य स्त्री को उसके पारंपरिक, सीमित और रूढ़िगत ढाँचे से बाहर निकालकर उसे एक स्वतंत्र, स्वायत्त और आत्मनिर्भर व्यक्तित्व के रूप में स्थापित करना है। यह दृष्टि इस बात पर बल देती है कि स्त्री केवल परिवार, विवाह या समाज की निर्धारित भूमिकाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि उसका अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व, अपनी इच्छाएँ और अपनी पहचान है।

इस विमर्श में स्त्री को "देखी जाने वाली वस्तु" के बजाय "अनुभव करने वाली चेतना" के रूप में देखा जाता है। यह परिवर्तन स्त्री की सामाजिक स्थिति को समझने के साथ-साथ उसके मानसिक और भावनात्मक संसार को भी समझने का प्रयास करता है। स्त्री विमर्श इस बात को स्पष्ट करता है कि समाज द्वारा निर्मित भूमिकाएँ प्राकृतिक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और ऐतिहासिक रूप से निर्मित हैं, जिन्हें बदला जा सकता है।

कृष्णा सोबती : स्त्री चेतना की सशक्त आवाज:

कृष्णा सोबती हिंदी साहित्य में स्त्री चेतना की सबसे प्रखर, साहसी और प्रभावशाली लेखिका मानी जाती हैं। उनका लेखन स्त्री जीवन के यथार्थ, उसकी जटिलताओं, उसकी इच्छाओं और उसकी स्वतंत्रता की आकांक्षा को अत्यंत गहराई और संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करता है। उनके उपन्यासों में स्त्री केवल सहनशील या आदर्श छवि नहीं है, बल्कि वह एक जागरूक, आत्मचिंतनशील और विद्रोही व्यक्तित्व के रूप में उभरती है।

कृष्णा सोबती के प्रमुख उपन्यास—*मित्रो मरजानी*, *ज़िंदगीनामा*, *डार से बिछुड़ी* आदि—स्त्री जीवन के विविध पक्षों को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से उजागर करते हैं। इन रचनाओं में स्त्री अपने अस्तित्व, अपने

Young Researcher
Peer Reviewed | International Open Access Journal
ISSN: 2277-7911 | Impact Factor – 5.958| *Website:* https://yra.ijaar.co.in/
Volume-14, Issue-3 | July – August – September 2025

शरीर, अपनी इच्छाओं और अपनी सामाजिक स्थिति के प्रति सजग दिखाई देती है।[4]

विशेष रूप से *मित्रो मरजानी* हिंदी साहित्य में एक क्रांतिकारी उपन्यास माना जाता है, जिसमें स्त्री यौनिकता को बिना किसी संकोच, अपराधबोध या नैतिक दबाव के प्रस्तुत किया गया है। यह प्रस्तुति उस समय की सामाजिक और साहित्यिक परंपराओं को चुनौती देती है और स्त्री को एक प्राकृतिक, मानवीय और स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में स्थापित करती है।[5]

सोबती की नायिकाएँ यह स्पष्ट करती हैं कि स्त्री केवल सामाजिक अपेक्षाओं को पूरा करने वाली इकाई नहीं है, बल्कि वह अपनी इच्छाओं, भावनाओं और निर्णयों की स्वामिनी भी है। उनका लेखन स्त्री को एक ऐसी चेतना प्रदान करता है, जो उसे अपने जीवन के निर्णय स्वयं लेने की क्षमता देता है।

स्त्री की आत्म-खोज और पहचान:

कृष्णा सोबती के साहित्य में स्त्री की आत्म-खोज केवल एक विषयगत तत्व नहीं है, बल्कि यह संपूर्ण कथा संरचना की एक केंद्रीय और गतिशील प्रक्रिया है। उनकी नायिकाएँ ऐसे समाज में स्थित हैं जहाँ पहचान पहले से निर्धारित, नियंत्रित और परंपरागत भूमिकाओं के माध्यम से तय की जाती है। ऐसे में स्त्री की आत्म-खोज एक प्रकार का "आंतरिक विद्रोह" बन जाती है, जिसमें वह अपने अस्तित्व को समाज द्वारा परिभाषित सीमाओं से बाहर समझने का प्रयास करती है।[6]

सोबती की स्त्रियाँ यह अनुभव करती हैं कि उनके जीवन की पहचान केवल "पत्नी", "माँ", "बेटी" या "बहू" जैसी सामाजिक भूमिकाओं तक सीमित कर दी गई है, जबकि उनका वास्तविक व्यक्तित्व इन भूमिकाओं से कहीं अधिक जटिल, गहरा और स्वतंत्र है। यही बोध उनकी आत्म-खोज की शुरुआत है। यह प्रक्रिया धीरे-धीरे उन्हें उस बिंदु तक ले जाती है जहाँ वे अपने भीतर झाँककर अपने अस्तित्व को नए सिरे से परिभाषित करने लगती हैं।

इस आत्म-खोज की प्रक्रिया में स्त्री केवल बाहरी दुनिया से संघर्ष नहीं करती, बल्कि अपने भीतर के द्वंद्वों से भी जूझती है। यह द्वंद्व परंपरा और आधुनिकता, कर्तव्य और इच्छा, सामाजिक अपेक्षा और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बीच लगातार चलता रहता है। यही कारण है कि सोबती की नायिकाएँ कभी स्थिर नहीं रहतीं, बल्कि वे निरंतर बदलती, विकसित होती और स्वयं को पुनः निर्मित करती रहती हैं।

उनकी स्त्रियाँ यह समझने लगती हैं कि पहचान कोई स्थायी सत्य नहीं, बल्कि एक "निर्माणशील प्रक्रिया" (process of becoming) है, जो अनुभवों, संघर्षों और आत्मचिंतन से आकार लेती है। यही समझ उन्हें आत्म-स्वीकृति की ओर ले जाती है, जहाँ वे अपने अस्तित्व को बिना किसी अपराधबोध के स्वीकार करने लगती हैं।

वे बार-बार अपने भीतर यह प्रश्न उठाती हैं—

- मैं कौन हूँ?
- मेरी वास्तविक पहचान क्या है?
- क्या मेरा अस्तित्व केवल समाज की देन है या मेरा अपना भी कोई स्वर है?

- क्या मैं केवल भूमिकाओं का योग हूँ या एक स्वतंत्र चेतना?

इन प्रश्नों के माध्यम से स्त्री धीरे-धीरे आत्म-जागरूकता की अवस्था में प्रवेश करती है। यह अवस्था उसे यह समझने में मदद करती है कि उसका अस्तित्व किसी बाहरी शक्ति द्वारा निर्धारित नहीं होना चाहिए, बल्कि उसे स्वयं अपनी पहचान का निर्माण करना चाहिए।[7]

यौनिकता और आत्म-स्वीकृति:

कृष्णा सोबती का साहित्य हिंदी उपन्यास परंपरा में स्त्री यौनिकता के चित्रण की दृष्टि से एक ऐतिहासिक मोड़ माना जाता है। उन्होंने स्त्री की यौनिकता को किसी नैतिक दोष, सामाजिक कलंक या वर्जना के रूप में नहीं देखा, बल्कि उसे स्त्री के प्राकृतिक और जैविक अस्तित्व का एक महत्वपूर्ण और अनिवार्य हिस्सा माना।

उनके अनुसार, स्त्री की यौनिक इच्छाएँ उसकी पहचान को कमजोर नहीं करतीं, बल्कि उसे पूर्णता प्रदान करती हैं। यह दृष्टिकोण उस समय अत्यंत साहसिक और विवादास्पद माना गया, क्योंकि भारतीय सामाजिक संरचना में स्त्री यौनिकता को लंबे समय तक मौन, नियंत्रण और दमन के माध्यम से ढका गया था।[8]

सोबती की रचनाओं में जब स्त्री अपनी इच्छाओं को स्वीकार करती है, तो यह स्वीकार्यता केवल शारीरिक स्तर तक सीमित नहीं रहती, बल्कि यह उसके संपूर्ण व्यक्तित्व में आत्मविश्वास, स्वतंत्रता और आत्म-सम्मान का संचार करती है। यह प्रक्रिया स्त्री को "वस्तु" से "व्यक्ति" में परिवर्तित करती है।

उनके साहित्य में यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि यौनिकता का दमन स्त्री के व्यक्तित्व को खंडित करता है, जबकि उसका स्वीकार उसे पूर्णता की ओर ले जाता है। यह स्वीकार उसे इस बोध तक पहुँचाता है कि उसका शरीर और उसकी इच्छाएँ केवल समाज के नियंत्रण के लिए नहीं हैं, बल्कि वे उसकी अपनी चेतना का हिस्सा हैं।

इस प्रकार यौनिकता का प्रश्न सोबती के साहित्य में केवल शारीरिक नहीं, बल्कि दार्शनिक और अस्तित्ववादी (existential) प्रश्न बन जाता है। यह स्त्री को यह समझने में मदद करता है कि आत्म-स्वीकृति के बिना आत्म-खोज अधूरी है।

सोबती का यह दृष्टिकोण स्त्री विमर्श को एक नई दिशा देता है, जहाँ स्त्री को केवल सामाजिक संरचना का उत्पाद नहीं, बल्कि एक स्वतंत्र और आत्मनिर्भर चेतना के रूप में देखा जाता है।[9]

भाषा और पहचान:

कृष्णा सोबती की भाषा शैली उनके स्त्री-विमर्श की सबसे विशिष्ट और सशक्त आधारभूमि है। उन्होंने पारंपरिक, शुद्धतावादी और औपचारिक हिंदी की सीमाओं को तोड़ते हुए एक ऐसी जीवंत, बहुभाषिक और अनुभव-आधारित भाषा का सृजन किया, जिसमें लोकभाषा, पंजाबी, उर्दू तथा बोलचाल की हिंदी का स्वाभाविक समन्वय दिखाई देता है।[10] यह भाषिक प्रयोग केवल शैलीगत नवीनता नहीं है,

बल्कि एक वैचारिक हस्तक्षेप भी है, जो साहित्य को अधिक जनसामान्य और जीवन-सापेक्ष बनाता है।

सोबती की भाषा में "जीवन की गंध" और "अनुभव की ताप" विद्यमान है। उनकी शब्दावली, संवाद-शैली और वाक्य विन्यास इस प्रकार निर्मित हैं कि पाठक को ऐसा प्रतीत होता है मानो वह पात्रों के साथ उसी सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में उपस्थित हो। यह भाषा कृत्रिमता से मुक्त, सहज और प्रवाहमयी है, जो स्त्री के अनुभवों को बिना किसी अलंकरण या बनावट के सीधे प्रस्तुत करती है।

विशेष रूप से उनके स्त्री पात्रों की भाषा अत्यंत स्वाभाविक, खुली और निर्भीक होती है। यह भाषा न केवल उनके मनोभावों को व्यक्त करती है, बल्कि उनके भीतर की चेतना, विद्रोह और आत्म-स्वीकृति को भी उजागर करती है। इस प्रकार भाषा उनके साहित्य में केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं रहती, बल्कि वह स्त्री की पहचान निर्माण का एक सक्रिय उपकरण बन जाती है।

सोबती की भाषा का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि वह स्त्री को "आवाज़" प्रदान करती है। परंपरागत साहित्य में जहाँ स्त्री अक्सर मौन या नियंत्रित अभिव्यक्ति तक सीमित रहती थी, वहीं सोबती की रचनाओं में वह खुलकर बोलती है, प्रश्न करती है और अपने अनुभवों को बिना संकोच व्यक्त करती है। यह भाषिक स्वतंत्रता ही स्त्री की वैचारिक स्वतंत्रता का आधार बनती है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि कृष्णा सोबती की भाषा केवल साहित्यिक प्रयोग नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक और वैचारिक प्रतिरोध का माध्यम है, जो स्त्री को उसकी वास्तविक पहचान और अभिव्यक्ति का अधिकार प्रदान करता है।

पितृसत्ता और सामाजिक संघर्ष:

कृष्णा सोबती के साहित्य में पितृसत्तात्मक व्यवस्था एक प्रमुख और प्रभावशाली सामाजिक संरचना के रूप में उपस्थित है, जो स्त्री के जीवन, उसकी स्वतंत्रता और उसकी पहचान को नियंत्रित करने का प्रयास करती है।[11] यह व्यवस्था केवल बाहरी सामाजिक नियमों तक सीमित नहीं रहती, बल्कि यह स्त्री के मानसिक संसार, उसकी चेतना और उसके आत्मविश्वास को भी प्रभावित करती है।

सोबती की नायिकाएँ इस पितृसत्तात्मक ढाँचे के भीतर रहते हुए भी उसकी सीमाओं को पहचानती हैं और उसके विरुद्ध प्रतिरोध का स्वर उठाती हैं। यह प्रतिरोध कई रूपों में प्रकट होता है—कभी मौन असहमति के रूप में, कभी प्रश्न करने के रूप में और कभी स्पष्ट विद्रोह के रूप में। यह संघर्ष उनके जीवन का अनिवार्य हिस्सा बन जाता है, जो उन्हें आत्म-चेतना की ओर अग्रसर करता है।

उनकी रचनाओं में यह स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि पितृसत्ता स्त्री को एक निश्चित "आदर्श छवि" में बाँधने का प्रयास करती है—जहाँ वह त्यागमयी, सहनशील और आज्ञाकारी हो। किन्तु सोबती की स्त्रियाँ इस छवि को स्वीकार करने से इनकार करती हैं। वे अपने अनुभवों, अपनी इच्छाओं और अपने अधिकारों के आधार पर अपने अस्तित्व को पुनः परिभाषित करती हैं।

Young Researcher
Peer Reviewed | International Open Access Journal
ISSN: 2277-7911 | Impact Factor – 5.958| *Website:* https://yra.ijaar.co.in/
Volume-14, Issue-3 | July – August – September 2025

यह संघर्ष केवल सामाजिक स्तर पर नहीं, बल्कि मनोवैज्ञानिक स्तर पर भी चलता है। स्त्री को एक ओर समाज की अपेक्षाओं को पूरा करना होता है, वहीं दूसरी ओर वह अपनी स्वतंत्र पहचान की खोज भी करती है। यह द्वंद्व उसे निरंतर आत्म-विश्लेषण और आत्म-संघर्ष की ओर ले जाता है।

सोबती की नायिकाओं का यह संघर्ष अंततः उन्हें आत्मनिर्भरता, आत्मसम्मान और आत्म-स्वीकृति की ओर ले जाता है। वे यह समझने लगती हैं कि उनकी स्वतंत्रता किसी बाहरी स्वीकृति पर निर्भर नहीं है, बल्कि यह उनके भीतर की चेतना से उत्पन्न होती है।

इस प्रकार कृष्णा सोबती का साहित्य पितृसत्ता के विरुद्ध स्त्री के संघर्ष को अत्यंत गहराई और संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करता है। यह संघर्ष केवल विरोध का प्रतीक नहीं, बल्कि एक नई पहचान के निर्माण की प्रक्रिया भी है, जिसमें स्त्री अपने अस्तित्व को स्वयं गढ़ती है।

कृष्णा सोबती का योगदान:

आधुनिक हिंदी साहित्य में कृष्णा सोबती का योगदान बहुआयामी, गहन और युगांतरकारी है। उन्होंने न केवल स्त्री को साहित्य के केंद्र में स्थापित किया, बल्कि उसे एक सक्रिय, आत्मचेतन और स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में पुनर्स्थापित किया। उनके लेखन में स्त्री केवल "विषय" नहीं रहती, बल्कि वह स्वयं अपनी चेतना, अपने अनुभव और अपने अस्तित्व की व्याख्याकार बन जाती है। यह परिवर्तन हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श की दिशा और स्वरूप दोनों को मूलतः परिवर्तित करता है।

कृष्णा सोबती का सबसे बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने स्त्री को पारंपरिक रूढ़ियों और आदर्शीकृत छवियों से मुक्त कर उसे एक वास्तविक, जटिल और बहुआयामी व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत किया। उनके साहित्य में स्त्री न तो केवल त्यागमयी है, न ही केवल सहनशील; बल्कि वह प्रश्न करने वाली, निर्णय लेने वाली और आवश्यक होने पर विद्रोह करने वाली चेतना है। यह विद्रोह केवल सामाजिक नियमों के विरुद्ध नहीं, बल्कि उस मानसिक संरचना के विरुद्ध भी है जो स्त्री को सीमित करती है।

उनकी रचनाएँ यह स्पष्ट करती हैं कि स्त्री की पहचान कोई स्थिर और पूर्वनिर्धारित इकाई नहीं है, बल्कि यह एक सतत विकसित होने वाली प्रक्रिया है, जो समय, अनुभव, संघर्ष और आत्म-चेतना के आधार पर निरंतर बदलती रहती है। इस दृष्टि से सोबती का साहित्य स्त्री को "निर्धारित अस्तित्व" से निकालकर "निर्माणशील अस्तित्व" (becoming identity) की ओर ले जाता है।

कृष्णा सोबती का एक महत्वपूर्ण योगदान यह भी है कि उन्होंने स्त्री यौनिकता को साहित्यिक विमर्श का वैध और आवश्यक हिस्सा बनाया। उन्होंने यह स्थापित किया कि स्त्री की इच्छाएँ, उसका शरीर और उसकी संवेदनाएँ किसी सामाजिक नियंत्रण का विषय नहीं, बल्कि उसकी पहचान का स्वाभाविक अंग हैं। इस दृष्टिकोण ने हिंदी साहित्य में लंबे समय से व्याप्त मौन और संकोच को तोड़ा और स्त्री को आत्म-स्वीकृति की दिशा में प्रेरित किया।

Young Researcher
Peer Reviewed | International Open Access Journal
ISSN: 2277-7911 | Impact Factor – 5.958| *Website:* https://yra.ijaar.co.in/
Volume-14, Issue-3 | July – August – September 2025

भाषा के स्तर पर भी उनका योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने साहित्यिक भाषा को कृत्रिमता से मुक्त कर उसे जीवन के अधिक निकट लाया। लोकभाषा, क्षेत्रीयता और बोलचाल की शैली के माध्यम से उन्होंने स्त्री अनुभवों को अधिक प्रामाणिकता और जीवंतता प्रदान की। इस प्रकार भाषा उनके यहाँ केवल अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं, बल्कि पहचान निर्माण का एक सशक्त उपकरण बन जाती है।

साथ ही, सोबती का साहित्य स्त्री के सामाजिक संघर्ष को भी गहराई से प्रस्तुत करता है। उनकी नायिकाएँ पितृसत्तात्मक व्यवस्था के भीतर रहते हुए भी उसकी सीमाओं को पहचानती हैं और उसके विरुद्ध प्रतिरोध करती हैं। यह प्रतिरोध उन्हें आत्मनिर्भरता, आत्मसम्मान और स्वतंत्रता की ओर ले जाता है। इस प्रकार उनका लेखन स्त्री को केवल संघर्षशील ही नहीं, बल्कि परिवर्तनकारी शक्ति के रूप में स्थापित करता है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि कृष्णा सोबती का योगदान निम्न बिंदुओं में स्पष्ट होता है—

- स्त्री को साहित्य के केंद्र में स्थापित करना
- स्त्री को चेतन, स्वतंत्र और निर्णयक्षम व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत करना
- स्त्री यौनिकता को वैध और स्वाभाविक रूप में स्वीकार करना
- भाषा के माध्यम से स्त्री अनुभवों को प्रामाणिक बनाना
- पितृसत्तात्मक संरचनाओं के विरुद्ध वैचारिक प्रतिरोध प्रस्तुत करना
- स्त्री पहचान को एक गतिशील और निर्माणशील प्रक्रिया के रूप में स्थापित करना

इस प्रकार कृष्णा सोबती का साहित्य आधुनिक हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श की एक मजबूत आधारशिला के रूप में स्थापित होता है।

निष्कर्ष:

आधुनिक हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श का विकास एक दीर्घकालिक, जटिल और बहुआयामी वैचारिक प्रक्रिया का परिणाम है, जिसमें सामाजिक परिवर्तन, सांस्कृतिक पुनर्विचार और साहित्यिक नवाचार तीनों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस व्यापक परिप्रेक्ष्य में कृष्णा सोबती का स्थान अत्यंत विशिष्ट और महत्वपूर्ण है, क्योंकि उन्होंने स्त्री जीवन के यथार्थ को न केवल गहराई से समझा, बल्कि उसे एक नई दृष्टि और नई भाषा में अभिव्यक्त भी किया।

उनका साहित्य यह स्पष्ट करता है कि स्त्री की आत्म-खोज और पहचान की प्रक्रिया किसी एक क्षण में पूर्ण नहीं होती, बल्कि यह एक निरंतर चलने वाली यात्रा है, जिसमें वह समाज, परंपरा और स्वयं के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास करती है। इस यात्रा में उसे अनेक बाधाओं, संघर्षों और द्वंद्वों का सामना करना पड़ता है, किन्तु यही संघर्ष उसे आत्म-चेतना और आत्म-स्वीकृति की ओर अग्रसर करते हैं।

कृष्णा सोबती की नायिकाएँ यह सिद्ध करती हैं कि स्त्री की पहचान किसी बाहरी संरचना—जैसे परिवार, समाज या परंपरा—द्वारा स्थायी रूप से निर्धारित नहीं की जा सकती। बल्कि यह पहचान

उसके व्यक्तिगत अनुभवों, भावनात्मक संवेदनाओं, मानसिक संघर्षों और आत्म-विश्लेषण की प्रक्रिया से निर्मित होती है। यह पहचान स्थिर नहीं, बल्कि परिवर्तनशील और गतिशील होती है, जो समय और परिस्थितियों के साथ विकसित होती रहती है।

उनका लेखन स्त्री को केवल पीड़ित या पराधीन इकाई के रूप में प्रस्तुत नहीं करता, बल्कि उसे एक जागरूक, संघर्षशील, आत्मनिर्भर और निर्णयक्षम व्यक्तित्व के रूप में स्थापित करता है। वह समाज की रूढ़ियों और परंपरागत मान्यताओं को चुनौती देती है और अपने अस्तित्व के लिए नए रास्ते खोजती है। इस प्रक्रिया में वह केवल स्वयं को ही नहीं बदलती, बल्कि सामाजिक संरचना को भी प्रभावित करती है।

इस प्रकार कृष्णा सोबती का साहित्य स्त्री विमर्श को एक नई दिशा, नई चेतना और नई वैचारिक गहराई प्रदान करता है। उनका लेखन यह संदेश देता है कि वास्तविक स्वतंत्रता तभी संभव है जब स्त्री अपनी पहचान को स्वयं समझे, उसे स्वीकार करे और उसे अभिव्यक्त करने का साहस जुटाए।[12]

अंततः यह कहा जा सकता है कि कृष्णा सोबती का साहित्य न केवल आधुनिक हिंदी साहित्य की अमूल्य धरोहर है, बल्कि वह स्त्री अस्मिता, स्वतंत्रता और आत्म-चेतना के विकास का एक सशक्त दस्तावेज भी है। उनका योगदान हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श की आधारशिला के रूप में सदैव स्मरणीय रहेगा।

संदर्भ सूची:

1. सोबती, कृष्णा। *मित्रो मरजानी*। राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1966, पृ. 25–30।
2. सोबती, कृष्णा। *ज़िन्दगीनामा*। राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1979, पृ. 110–118।
3. सोबती, कृष्णा। *डार से बिछुड़ी*। राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1958, पृ. 40–45।
4. सोबती, कृष्णा। *दिलो दानिश*। राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993, पृ. 55–60।
5. शर्मा, रामविलास। *हिंदी साहित्य का इतिहास*। राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ. 410–415।
6. सिंह, नामवर। *आलोचना और विचारधारा*। राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001, पृ. 150–155।
7. वर्मा, नगेन्द्र। *आधुनिक हिंदी उपन्यास और नारी चेतना*। लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2012, पृ. 88–92।
8. अग्रवाल, कमला। *स्त्री विमर्श और हिंदी साहित्य*। वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृ. 60–66।
9. चौधरी, मृदुला। *कृष्णा सोबती के उपन्यासों में स्त्री चेतना*। साहित्य भवन, आगरा, 2018, पृ. 95–100।